शिक्षक बनने की प्रक्रिया में प्रशिक्षणों पर खासा जोर दिया जाता रहा है। इधर के सालों में बी.एड. और एम.एड. के पाठ्यक्रमों का व्यावसायिकरण ज्यादा हुआ है और प्रशिक्षणों की गुणवत्ता में कमी आई है। इन्हीं चिंताओं की ओर ध्यान दिलाते हुए यह लेख प्रशिक्षणों की औपचारिकता की बजाय अध्यापन के अवसर और सेवा के दौरान सतत क्षमतावर्द्धन की जरूरत पर जोर देता है। सेवा पूर्व अध्यापक प्रशिक्षणों को बंद करने की भी सिफारिश करता है।

शिवरतन थानवी

प्राथमिक शिक्षक से शिक्षा विभाग में संयुक्त निदेशक तक 40 वर्ष कार्य करने के बाद 1988 में सेवानिवृत्त हुए। 'शिविरा' पत्रिका (मासिक) एवं 'नया शिक्षक'/'टीचर टुडे' (त्रैमासिक) के 13 वर्षों से पूर्णकालिक संपादक हैं।

क्या जरूरत है बी.एड. की?

शिक्षकों के प्रशिक्षण की जरूरत को नकारा नहीं जा सकता किन्तु शिक्षक प्रशिक्षणों की वर्तमान दशा को देखते हुए उस पर गंभीर पुनर्विचार की जरूरत है। शिक्षक बनाने के लिए दिए जाने वाले सेवा पूर्व प्रशिक्षणों ने आज जिस तरह उद्योग का रूप ले लिया है उसे देखते हुए तो लगता है कि इन्हें बंद कर सारा ध्यान सेवाकालीन शिक्षक प्रशिक्षणों पर केंद्रित किया जाए तो शायद कुछ बेहतर परिणाम हासिल किए जा सकें।

अन्य पेशों से तुलना की भूल

मेरा ऐसा मानना है कि शिक्षक के पेशे की तुलना डॉक्टर और इंजीनियर के पेशों से करना और इनकी ही तरह सेवा से पहले गहन प्रशिक्षण पर जोर देना एक भारी भूल है। डॉक्टर या इंजीनियर के पेशों में मैट्रिक या सीनियर सैकण्डरी तक की पढ़ाई इन कामों के लिए मात्र एक आधार का काम करती है, जिस पर आगे की व्यावसायिक शिक्षा का भव्य प्रासाद खड़ा होता है। लेकिन शिक्षक के संदर्भ में ऐसा नहीं है। शिक्षक ने स्कूली शिक्षा के दौरान जो सीखा है वह आधार मात्र नहीं बल्कि उसके व्यवसाय का भव्य प्रासाद भी होता है। उसे अपने शिक्षण व्यवसाय में इसी का उपयोग करना होता है। जो पढ़ा है, वही तो उसे पढ़ाना है।

बच्चों को सिखाने के लिए जिन विधियों का उसे उपयोग करना है, स्वयं अपनी शिक्षा के दौरान वह उन विधियों को देख चुका होता है, अनुभव कर चुका होता है, भली-भांति सीख चुका होता है। विषयों के शिक्षण की विधियों के उस स्वरूप को वह आत्मसात कर चुका होता है। शिक्षण से संबंधित तमाम बारीकियों को वह अनायास ही जान चुका होता है। फिर क्यों माना जाए कि शिक्षक बनने के लिए अलग से प्रशिक्षण की जरूरत है?

प्रशिक्षण का उद्योग

यह भी देखे जाने की जरूरत है कि भारत में शिक्षक प्रशिक्षणों की शुरुआत जिस मकसद को ध्यान में रखकर की गई, क्या वे आज भी उसी लक्ष्य को ध्यान में रखकर संचालित किए जा रहे हैं? एक समय में मुफ्त में दिया जाने वाला शिक्षक प्रशिक्षण आज भारी उद्योग बन गया है। राजस्थान में अभी कुछ समय पहले तक मात्र दो सरकारी और आठ निजी शिक्षक प्रशिक्षण कॉलेज थे। आज निजी बी.एड. कॉलेजों की संख्या बढ़कर 768 हो गई है जबकि वही दो सरकारी कॉलेज हैं। इन 770 कॉलेजों में 77 हजार विद्यार्थी पढ़ते हैं।

यह कॉलेज अनियमितताओं व भ्रष्टाचार के गढ़ बन चुके हैं। विद्यार्थी, अभिभावक और शिक्षक सभी त्रस्त हैं। नीति नियंताओं के लिए शिकायतें आम बात हो गई हैं। संसद ने शिक्षक प्रशिक्षण संस्थाओं के नियमन के लिए नेशनल कांउसिल फॉर टीचर एज्यूकेशन (एनसीटीई) का गठन किया। एनसीटीई के कानून दिखने में जितने सख्त हैं, लागू करने वालों ने उन्हें उतना ही हल्का बना दिया। एनसीटीई के मानदण्डों की अनदेखी कर निजी कॉलेजों को मान्यता दी जाती रही है। किन्हीं कॉलेजों को यूनीवर्सिटी से संबद्धता के बिना मान्यता दे दी जाए तो उनकी डिग्री अवैध मानी जाती है। ऐसे कॉलेजों के परीक्षा परिणाम अटके रहते हैं और इसके साथ ही अटका रहता है वहां पढ़ने वाले छात्रों का भविष्य। इनके खिलाफ कार्रवाई करना चाहें तो कॉलेज वाले कोर्ट से स्टे ले आते हैं, एनसीटीई कार्रवाई कर नहीं पाती, जांच के निर्णय भी समय पर नहीं आते।

किसी भी प्रशिक्षण कार्यक्रम का उद्देश्य होता है अच्छे अध्यापक बनाना। आयोजक मानते हैं कि छोटी कक्षाओं के लिए छोटा सेवा पूर्व प्रशिक्षण (एसटीसी) और बड़ी कक्षाओं के लिए बड़ा सेवा पूर्व प्रशिक्षण (बी.एड.) आवश्यक है। इस मान्यता का परिणाम क्या हुआ है? प्रतिवर्ष अस्सी हजार अध्यापक प्रशिक्षण प्राप्त करते हैं और नियुक्ति नहीं मिलती आठ हजार को भी। वर्ष दर वर्ष हताशा की बेतहाशा वृद्धि होती है। कितना निरर्थक है यह आयोजन? धन, समय, आशा, विश्वास और ऊर्जा का इतना अपव्यय किसलिए, जबकि इतने शिक्षकों को नियुक्ति ही नहीं दी जा सकती?

शिक्षक का ज्ञान

आखिर एक शिक्षक प्रशिक्षण के दौरान क्या पढ़ता है? शिक्षा का इतिहास, शिक्षण विधियां, समस्याएं और शिक्षा-सिद्धांत व शिक्षा-मनोविज्ञान तथा शिक्षण प्रक्रिया आदि की कुछ बातें। इनमें थोड़ा शिक्षा-दर्शन का छिड़काव हो जाता है या शिक्षण-विज्ञान या शैक्षिक तकनीकी का मुलम्मा चढ़ा दिया जाता है। निश्चय ही इन्हें जानकर उसे लाभ होगा, लेकिन उतना नहीं जितना हमने सोच रखा है।

मेरी राय में प्राथमिक या माध्यमिक स्तर तक के प्रारंभिक शिक्षण के लिए सेवा पूर्व प्रशिक्षण

की कोई आवश्यकता नहीं है। शिक्षकों का प्रशिक्षण उनके सेवाकाल के दौरान जीवन भर होता रहे, यही श्रेयस्कर है जिसका व्यय विद्यालय प्रबंधन द्वारा वहन किया जाए। वरिष्ठ शिक्षक उनसे संवाद कर उन्हें आगे बढ़ने में मदद कर सकते हैं, उन्हें प्रेरणाप्रद शिक्षा-साहित्य, पुस्तकें और पत्रिकाएं पढ़ने के लिए प्रेरित कर सकते हैं। स्वयं अपनी कक्षा में नए शिक्षकों को बुलाकर अपनी शिक्षण पद्धति देखने को आमंत्रित कर सकते हैं।

पाठ योजनाओं का आल-जाल

वर्तमान में संचालित सेवा पूर्व शिक्षक-प्रशिक्षण के दौरान अक्सर ऐसा देखा जाता है कि प्राध्यापक विद्यार्थियों से पाठ-योजना बनवाने पर बहुत बल देते हैं और पाठ्यसामग्री पर भी खूब खर्च करवाते हैं। वे इन पाठ योजनाओं में संशोधन और मॉडल की साज-सज्जा पर बहुत ध्यान देते हैं। शिक्षण से पूर्व पाठ योजना को विषयवार विशेष रूप में लिखने की इतनी जिद क्यों की जाती है? पठन सामग्री का खर्चीला और रंग-बिरंगा आल-जाल फैलाने वाले को अधिक अंक क्यों दिए जाते हैं? इन बातों पर पुनर्विचार किए जाने की जरूरत है।

अध्यापन के लिए संसाधनों की नहीं शिक्षक की रचनाशीलता की जरूरत है। एक बार जयपुर में अंग्रेजी शिक्षकों की एक सेमिनार में एक कॉन्वेण्ट स्कूल की प्रिंसिपल कार में बहुत-सा रंग-बिरंगा सामान भर लाईं। उन्होंने खूब अच्छा पाठ पढ़ाने की प्रस्तुति दी। दूसरे दिन सेमिनार के एक संभागी ने बिना किसी विशेष सामग्री के पाठ-प्रदर्शन शिक्षण किया। वह खाली हाथ आया, किन्तु उसने ब्लैक बोर्ड पर चॉक से चित्र बनाकर, अपने जूतों से आवाजें पैदा करके, चुटकले-दोहे सुनाकर, अंग्रेजी टंग-ट्विस्टरों का प्रयोग कर, जेब से पेंसिल या रूमाल निकालकर उनके प्रयोग से तथा पाठ में आए प्रसंगों के अनुसार अभिनय करके, पाठ को इतना आकर्षक और रोचक बना दिया कि दर्शकों में दूने वेग से तालियां बजीं। वह कक्षा के ओर-छोर पर विद्युत वेग से आता-जाता रहा और कभी इस कोने और कभी उस कोने से विद्यार्थियों को सीखने की प्रक्रिया में शरीक करता रहा। पाठ के अंत में कॉन्वेण्ट स्कूल प्रिंसीपल ने उस शिक्षक की खूब प्रशंसा की और कहा कि यह भी पढ़ाने का मौलिक और प्रभावपूर्ण तरीका है और कम साधनों वाले विद्यालयों के लिए बहुत उपयोगी सिद्ध होगा।

एक अन्य प्रशिक्षण कार्यक्रम में न्यूजीलैंड से आए एक शिक्षक-प्रशिक्षक[1] ने अपने व्याख्यान के दौरान कहा था, "किसी कागज के टुकड़े पर तुम अपनी पाठ-योजना बनाकर मुझे दिखाओ चाहे न दिखाओ, मेरी सलाह लो चाहे न लो, मैं तुम्हें पढ़ाता देख लूं इतना ही काफी है।" पढ़ाता देखकर कोई वरिष्ठ शिक्षक भी नवागतुंक शिक्षक को मार्गदर्शन दे सकता है। सेवारत प्रशिक्षण का यह कार्य स्थानीय स्तर पर परस्पर सहयोग से संपन्न क्यों नहीं हो सकता? शिक्षक एक-दूसरे की कक्षाओं में जाकर शिक्षण कार्य देख सकते हैं। इस तरीके से स्थानीय स्तर पर भी लाभ हो सकता है और प्रशिक्षण विद्यालयों-महाविद्यालयों के विद्यार्थियों की परेशानी भी दूर हो सकती है।

प्रशिक्षण योजना और हकीकत

हमारे यहां प्रशिक्षण पाठ्यक्रमों की योजना और हकीकत के बीच गहरी खाई है। इन पाठ्यक्रमों के लिए बहुत किताबें प्रस्तावित की जाती हैं लेकिन कॉलेज के पुस्तकालय में इनकी

1. प्रो. एच. वी. जॉर्ज, निदेशक, अंग्रेजी शिक्षक प्रशिक्षण संस्थान, वेलिंगटन (न्यूजीलैंड)

गिनी-चुनी प्रतियां होती हैं। बाजार में यह मिलती नहीं क्योंकि इनकी मांग नहीं होती। अक्सर तो विद्यार्थी ही किताबें पढ़ना नहीं चाहते और अगर कुछ विद्यार्थी चाहते भी हैं और किताबें उपलब्ध भी हों तो उनके पास उन्हें खरीदने के लिए पैसे नहीं होते। सामान्यतः मेधावी विद्यार्थियों के नोट्स की शेष विद्यार्थी नकल कर लेते हैं या पास-बुक पढ़-पढ़ कर पास हो जाते हैं। किताबें पढ़कर ज्ञान प्राप्त करने का मन हो तो बिना प्रशिक्षण में गए भी हम अपने शिक्षण प्रशिक्षण का अभ्यास स्वयं जीवन भर जारी रख सकते हैं।

यदि यह मान भी लें कि पूरे साल प्रशिक्षण की पूरी पुस्तकें सभी प्रशिक्षु विद्यार्थी पढ़ ही डालते हैं, पाठ-योजनाएं भी सुघड़-सुंदर कलात्मक रंग-बिरंगे रूपों में लिख ही लेते हैं, तो भी क्या हुआ? अच्छा अध्यापक बनने के लिए क्या इतने मात्र को पर्याप्त मानना उचित है?

प्रशिक्षण संस्थाओं का विस्फोट

एक समय था जब मिडल, मैट्रिक, बी.ए., एम.ए. तक पढ़े लिखे व्यक्ति को अध्यापक की नौकरी मिल जाती थी। जब कभी बारी आती तब किसी को एस.टी.सी. तो किसी को बी.एड. का प्रशिक्षण दिला दिया जाता था। जिसकी जैसी शैक्षणिक योग्यता होती उसको उसी के अनुरूप सरकार के व्यय पर प्रशिक्षण दिया जाता।

समय के साथ पाठ्यक्रम बदला, पाठ्यपुस्तकें बदलीं, थोड़ा अंतर आया। फिर प्रशिक्षण संस्थाओं की संख्या में ऐसा विस्फोट आया कि सैकड़ों नए निजी विद्यालय-महाविद्यालय खड़े हो गए। आज हजारों प्रशिक्षित शिक्षक बेरोजगार घूम रहे हैं। प्रशिक्षण महाविद्यालयों में हजारों सीटें खाली हैं, किन्तु नए प्रशिक्षणार्थी को प्रवेश देने का समय नहीं बचा है।

नियुक्ति पूर्व प्रशिक्षण की नई प्रणाली को अपनाने की यह भूल हुई अध्यापक के पेशे की डॉक्टर, इंजीनियर आदि के कार्य से तुलना करने के कारण। जब शरीर विज्ञान के लिए इतना लंबा समय देना जरूरी है तो मनुष्य निर्माण के विज्ञान में लंबा समय क्यों न हो? ज्ञान-विज्ञान के शिक्षण के लिए भी कुछ तैयारी कराओ। बस रीजनल कॉलेज ऑव एज्यूकेशन खोल दिए गए। एनसीईआरटी जैसी भीमकाय संस्था का निर्माण कर दिया गया। सोचा, शिक्षा तत्व के गहरे अधुनातन ज्ञान का प्रकाश फैलेगा। प्रकाश फैला, पर थोड़ा। अच्छा शिक्षक बना, पर कोई-कोई ही।

वास्तविकता यह है कि अच्छा शिक्षक बनाना है तो सेवा पूर्व प्रशिक्षण की प्रणाली हमें तत्काल बंद कर देनी होगी। प्रशिक्षण के नाम से चलने वाली अर्थोपार्जन की दुकानों को भी बंद कर देना होगा। सरकारी प्रशिक्षण विद्यालयों, महाविद्यालयों, डाइटों तथा सही स्तर पर चलने वाले प्रतिष्ठित गैर-सरकारी प्रशिक्षण महाविद्यालयों को यह काम सौंपना होगा कि वे सेवारत शिक्षक प्रशिक्षण का दायित्व वहन करें। वहां शिक्षा संबंधी गहन स्वाध्याय होगा, प्रयोग होंगे, अभ्यास होगा; फिर उनके अनुभव संवाद-सूचना-चर्चा द्वारा, अल्पकालीन सेवारत प्रशिक्षण पाठ्यक्रमों द्वारा, रिफ्रेशर कोर्सेज द्वारा शैक्षिक शोधों के प्रतिवेदनों द्वारा तथा मासिक-त्रैमासिक पत्रिकाओं के माध्यम से ज्यादा से ज्यादा लोगों तक पहुंचाए जाएंगे। अधिक से अधिक अध्यापकों तक नया ज्ञान पहुंचाने के लिए सेमिनार-संगोष्ठियां आयोजित करें। बारां की डाइट 'पहल' नाम की त्रैमासिक पत्रिका के जरिए इस दिशा में संवाद-सूचना और चर्चा का अच्छा काम कर रही है। डाइटों को परीक्षा-बोर्डों की भूमिका में डाल देना भारी भूल थी जिसे शिक्षा का अधिकार कानून ने खत्म कर दिया है।

कैसे बने अच्छा शिक्षक

हमें यह भ्रम छोड़ देना चाहिए कि प्रशिक्षण डिग्रियां, डिप्लोमा या प्रमाण-पत्र अच्छे शिक्षक तैयार कर सकते हैं। कोई भी व्यक्ति अच्छा शिक्षक तभी बन सकता है जब वह जागृत हो और प्रयत्नशील रहे। तभी वह अपने व्यवसाय और विषय-शिक्षण की सामर्थ्य को समृद्ध बनाने वाली सूचना-सामग्री की तलाश में लगा रह सकता है। एक अच्छे शिक्षक को पूर्व में निर्मित ज्ञान की तलाश और उसके अध्ययन के साथ ही साथ अपने अनुभव, विचार व नवाचार को अभिव्यक्त करना भी सीखना होता है। विद्यालय में किए जाने वाले काम को लिखकर दूसरों को बताना भी सीखने की जरूरत है। इस तरह न सिर्फ व्यक्ति का अपना ज्ञान समृद्ध होता है बल्कि अन्यों को भी उससे सीखने में मदद मिलती है।

एक अच्छे शिक्षक के लिए खुद से यह पूछना भी बहुत महत्त्वपूर्ण है कि विद्यालय के इतने शिक्षकों और शिक्षार्थियों के बीच रहकर तथा विविध कक्षाओं में शिक्षण करके स्वयं उसने क्या सीखा? अपने कार्य और अनुभव से जो सीखा है उसे दर्ज करें और दूसरों को पढ़ने के लिए भी दें। ऐसे ही ज्ञानसृष्टि होती है। ज्ञान का अर्जन मूक बने रहकर या दूसरों की बातों को ग्रहण मात्र करने से ही नहीं होता, अंतःक्रिया और प्रतिक्रिया भी ज्ञान निर्माण के लिए उतने ही आवश्यक हैं।

एक अध्यापक तभी अध्यापक बनेगा जब वह इन सभी क्षेत्रों में रुचि लेगा, निपुणता प्राप्त करेगा। गुजरात के गिजुभाई बधेका एक बैरिस्टर थे, कोई बी.एड. या एम.एड. नहीं थे, लेकिन उन्होंने बाल-जगत की सेवा सर्वोपरि समझी और शिक्षा पर उन्होंने जितने ग्रंथ पढ़े, विद्यालयों को बालमंदिर बनाकर शिक्षण विधियों के जितने प्रयोग किए और बालक-बालिकाओं के हित की दृष्टि से बालकथाओं के अलावा शिक्षकों व माता-पिताओं के लिए जितने ग्रंथ लिखे वह एक अद्‌भुत अपूर्व कीर्तिमान है। वह सब शिक्षा के इतिहास का एक अविस्मरणीय अध्याय ही माना जाएगा। शिक्षा के क्षेत्र में जीवन भर गिजुभाई ने इतना गहरा काम किया कि देश के एक महान् शिक्षक बन गए, 'मूंछों वाली मां' कहलाए।[2]

कॉलेजों के व्याख्याता सेवा पूर्व प्रशिक्षण प्राप्त नहीं करते। टैगोर ने शिक्षा का इतना बड़ा संस्थान विकसित किया और गांधी ने देश को सत्य, प्रेम, अहिंसा का अनमोल शिक्षा-सूत्र दिया। टैगोर और गांधी ने अपना-अपना शिक्षा दर्शन प्रस्तुत किया। महर्षि अरविन्द और जे. कृष्णमूर्ति को मौलिक शिक्षण पद्धतियों का जनक माना जाता है और उन पद्धतियों का विश्व भर में अध्ययन किया जाता है। ओशो ने भी 'शिक्षा में क्रांति' पर खूब बोला है और उनके भाषण इसी नाम के (शिक्षा में क्रांति) दो ग्रंथों में संग्रहीत हैं।

व्यक्ति के पेशेवर विकास का एकमात्र रास्ता प्रशिक्षण ही नहीं है। ऐसे बहुत से उदाहरण मिल जाएंगे जहां व्यक्ति को पेशेवर पाठ्यक्रमों के प्रवेश के भी अयोग्य ठहरा दिया गया और उन व्यक्तियों ने उसी क्षेत्र में सफलता के कीर्तिमान स्थापित किए। शिक्षक के पेशे के लिए भी प्रशिक्षण से ज्यादा महत्त्वपूर्ण है अध्यापन के अवसर और स्वाध्याय को प्रोत्साहन। इसके साथ ही प्राथमिक-माध्यमिक शिक्षकों को सेवा के दौरान वरिष्ठ शिक्षकों के समूह की देख-रेख में सीखने और अपने अध्यापन को बेहतर बनाने के लिए मार्गदर्शन और प्रोत्साहन दिया जा सकता है।

2. देखें मोंटेसरी बाल शिक्षण समिति, राजलदेसर 331802 द्वारा प्रकाशित 'गिजुभाई ग्रंथमाला' की सभी पुस्तकें।

अध्यापक को यदि बेहतर बनाना है तो न सिर्फ उससे सेवा पूर्व प्रशिक्षण की शर्त उठा देनी होगी बल्कि सेवाकालीन प्रशिक्षणों में भी डिग्री के महत्त्व को कम कर संगोष्ठियों-सेमिनारों के अवसर उपलब्ध कराने होंगे। तभी वे अपने अर्जित ज्ञान और अनुभव को साझा कर नए ज्ञान का निर्माण कर सकेंगे। इन अवसरों पर ऐसे संदर्भ व्यक्तियों को आमंत्रित किया जा सकता है जो उनकी इस तरह की रुचियों को विकसित करने में मदद कर सकें। इस तरह सेवा काल के दौरान शिक्षकों का समय-समय पर अल्पकालिक प्रशिक्षण बहुत लाभकारी हो सकता है।

अपने विषय और शिक्षा की आधारभूत समझ के विकास के लिए अध्यापक का सतत स्वयं प्रशिक्षण होना अत्यंत आवश्यक है। अध्यापन महज तकनीक नहीं है यह विज्ञान और कला दोनों एक साथ है।

बेहतर शिक्षक तैयार करने का यही तरीका हो सकता है कि शिक्षक स्वयं अपनी प्रेरणा से सीखें। शिक्षा के क्षेत्र में नवाचार करें और प्रबंधक-प्रशासक इसमें उसकी सहायता करते रहें। इसके लिए कुछ नई तरह की व्यवस्थाओं को व्यवहार में लाना होगा। राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान व प्रशिक्षण परिषद् (एनसीईआरटी) यह काम बखूबी कर सकती है, लेकिन उसकी अनेक मजबूरियां हैं। एक तो उसमें स्वयं चिंतन व पहल की कमी है और दूसरे केंद्रीय सरकार के दबाव-प्रभाव से उसका मुक्त हो पाना बहुत मुश्किल है। इसके बिना आलोचनात्मक चिंतन संभव नहीं।

परिषद् के पूर्व निदेशक प्रो. कृष्ण कुमार ने एक साक्षात्कार में मीरा श्रीनिवासन को कहा है[3] कि शिक्षा के अधिकार कानून को लागू करने में प्राथमिकता यही होगी कि अध्यापकों का प्रशिक्षण हो और पाठ्यक्रमों तथा पाठ्यपुस्तकों में आए बदलाव को ध्यान में रखकर हो। ऐसा हो जो अध्यापकों को विचारशील बनाए तथा उनमें आलोचनात्मक शिक्षाशास्त्र (क्रिटिकल पेडागॉजी) की समझ पैदा करे। उन्होंने बताया कि एनसीईआरटी अब बी.एड. की पाठ्यपुस्तकों पर काम कर रही है। इस काम का भी विस्तार होना चाहिए। हमारा प्रस्ताव है कि यह पाठ्यपुस्तकें ऐसी हों कि विद्यार्थियों को पासबुकों की जरूरत न पड़े।

इसके साथ ही यह भी जरूरी है कि गांधी-गिजुभाई जैसे महान् शिक्षकों को याद रखें, सुखोम्लीन्स्की या मोंटेसरी की तरह 'बाल हृदय की गहराइयों' को अपने शिक्षण की ऊंचाइयों में सर्वोच्च स्थान दें, अर्थात् मानवीय संवेदना को सबसे ऊंचा रखें। यही हमारा शिक्षण है और यही हमारा प्रशिक्षण है। ◆

3. 'द हिन्दू', दैनिक, 4 मार्च 2010, दिल्ली संस्करण।